1939G Siddhprabhrat

Siddhaprabhrat (In Anekant 1939?)

सिद्धप्राभृत

[ले०—श्री पं० हीरालाल जैन शास्त्री]

लगभग १० वर्ष पूर्वकी बात है कि ब्यावरमें रा० ब०सेठ चम्पालालजी रामस्वरूपजीकी नशियाँ के शास्त्रभंडारको सँभालते समय किसी गुटकेमें कुन्द-कुन्दाचार्य-कृत ८४ पाहुड रचे जानेका उल्लेख मिला था और साथ ही उसमें लगभग ४३-४४ पाहुडोंके नाम भी देखनेको मिले थे, जिनमेंसे एक नाम 'सिद्धपाहुड' भी था । बादको मूलाराधनाकी छानबीनके समय भी इस नामपर दृष्टि तो गई, पर कार्यव्यासंगसे उधर कोई विशेष ध्यान न देसका। पर हाल ही में अनेकान्तकी किरण ८में पं०परमानन्द शास्त्रीके 'अपराजितसूरि और विजयोदया' शीर्षक लेखकी अन्तिम पंक्तियोंसे 'सिद्धपाहुड' की स्मृति ताजी हो आई और इस विषयका जो कुछ नया अनुसंधान मुझे मिला उसे पाठकोंके परिज्ञानार्थ यहाँ देता हूँ।

श्वेताम्बरागमोंमें नन्दीसूत्रको एक विशेष स्थान प्राप्त है। उसकी मलयगिरीया वृत्तिमें सिद्धोंका स्वरूप वर्णन करते समय सिद्धप्राभृतका अनेकों बार उल्लेख किया गया है और कहीं कहीं तो आचार्य परम्पराभेदको दिखाते हुए भी आदर्शपाठ सिद्धप्राभृतका ही स्वीकार किया गया-सा प्रतीत होता है। यद्यपि कहीं भी स्पष्ट रूपसे उसे दिगम्बर ग्रन्थ बतानेवाला कोई उल्लेख नहीं है; फिर भी २-१ स्थल ऐसे अवश्य हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि शायद वह दिगम्बर ग्रन्थ हो, और आश्चर्य नहीं कि कुन्दकुन्दके अन्य पाहुडोंके समान यह सिद्धपाहुड भी उन्हींकी दिव्य लेखनीसे प्रसूत हुआ हो; पर अभी ये सब बातें अन्धकारमें हैं।

नन्दीके सूत्र नं० १६-२० की वृत्तिको प्रारम्भ करते हुए टीकाकार मलयगिरि लिखते हैं कि—

"इहानन्तरसिद्धाः सत्पदप्ररूपणाद्रव्यप्रमाणक्षेत्र-स्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वरूपैरष्टभिरनुयोगद्वारैः परम्परसिद्धाः सत्पदप्ररूपणाद्रव्यप्रमाणक्षेत्रस्पर्शनाकालान्तरभावाल्पबहुत्वसन्निकर्षरूपैर्नवभिरनुयोगद्वारैः क्षेत्रादिषु पञ्चदशसु द्वारेषु 'सिद्धप्राभृते' चिन्तिताः ततस्तदनुसारेण वयमपि विनेयजनानुग्रहार्थं लेशतश्चिन्तयामः।"

अर्थात्—अनन्तरसिद्ध और परम्परासिद्धोंका उक्त अनुयोग द्वारों-द्वारा साविस्तृत वर्णन सिद्धप्राभृतमें किया गया है, सो उसीके अनुसार हम भी शिष्यजनोंके अनुग्रहार्थ लेशमात्रसे यहाँ पर विचार करते हैं।

इसके बाद उन्होंने 'तदुक्तं सिद्धप्राभृतटीकायां, उक्तं च सिद्धप्राभृतटीकायां, तथा चोक्तं सिद्धप्राभृतटीकायां, सिद्धप्राभृतसूत्रेऽप्युक्तम्, उक्तं च सिद्धप्राभृते, तथा चोक्तं सिद्धप्राभृते, यतः सिद्धप्राभृतटीकायामेवोक्तं, शेषेषु द्वारेषु सिद्धप्राभृतटीकातो भावनीयः' इत्यादि अनेक रूपसे सिद्धप्राभृतका उल्लेख किया है। और अन्तमें उन्होंने अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए लिखा है कि—

सिद्धप्राभृतसूत्रं तद्वृत्तिं चोपजीव्य मलयगिरिः।
सिद्धस्वरूपमेतन्निरवोचच्छिष्यबुद्धिहितः॥

अर्थात्—मुझ मलयगिरिने यह सिद्धोंका स्वरूप सिद्धप्राभृतसूत्र और उसकी वृत्तिका आश्रय लेकर शिष्योंकी बुद्धिके हितार्थ कहा है।

उक्त अवतरणोंमेंसे कुछ एक उल्लेख ऐसे हैं जिनसे मूलग्रन्थ, उसकी टीका और उसके आम्नाय-विभाग पर भी प्रकाश पड़ता है। उदाहरणार्थ—

'सिद्धपाहुड' गाथाओंमें रचा गया है। जैसे सिद्धप्राभृतसूत्रेऽप्युक्तम्—

'उस्सप्पिणीओसप्पिणीतइयचउत्थयसमासु अट्ठसयं।
पंचमियाए वीसं दसगं दसगं च सेसेसु॥'
'सेसा उ अट्ठभंगा दसगं दसगं तु होइ एक्केक्कं।'
'परिमाणेण अणंता कालोऽणाई अणंतओ तेसिं।'
इत्यादि।

सिद्धपाहुडकी टीका अतीव विस्तृत रही है ऐसा भी कितने ही उल्लेखोंसे प्रतीत होता है, जैसे—

'तदेवमिह सन्निकर्षो द्रव्यप्रमाणे सम्प्रपञ्च्यं चिन्तितः, शेषेषु द्वारेषु सिद्धप्राभृतटीकातो भावनीयः। इह तु ग्रंथ-गौरवभयान्नोच्यते।'

साथ ही, उल्लेखोंसे यह भी ज्ञात होता है कि मूलाराधनाकी प्राकृत टीकाके समान सिद्धपाहुड-की भी प्राकृत टीका रही है। जैसे—

'वीसा एगवरे विजये।' 'सेसेसु अरएसु दस सिज्झंति, दोसु वि उस्सप्पिणीओसप्पिणीसु संहरणतो'। 'जवमज्झाए य चत्तारि समया।' इत्यादि।

मतभेदवाले उल्लेखोंकी बानगी देखिए—

'सम्प्रत्यल्पबहुत्वं सिद्धप्राभृतक्रमेणोच्यते—' 'उक्तं च सिद्ध प्राभृते-सेसाण गईण दसदसगं' 'भगवांस्वार्य-श्यामः पुनरेवमाह—'इदं च क्षेत्रविभागेनाल्पबहुत्वं सिद्धप्राभृतटीकातो लिखितं।'

एक-दो उल्लेख कुछ महत्त्वपूर्ण मतभेदोंको लिए हुए भी देखनेको मिल रहे हैं पर उन्हें यहाँ-पर जानबूझकर छोड़ रहा हूँ; क्योंकि वे उल्लेख स्वयं एक स्वतन्त्र लेखके विषय हैं, जिन पर पुनः कभी लिखूंगा।

श्वेताम्बरीय विद्वानोंको इस विषयमें प्रकाश डालना आवश्यक है कि क्या उनके भंडारोंमें 'सिद्धप्राभृत' नामक कोई शास्त्र है? यदि हाँ, तो वह किसका बनाया है? टीकाकार कौन हैं? कितने प्रमाणवाला है? आदि। अभिधानराजेन्द्र कोषमें भी एक टिप्पणी इस नामपर लिखी मिलती है—

"सिद्धपाहुड—सिद्धप्राभृत नंतु स्वनामख्याते सिद्धाधिकारप्रतिपादके ग्रन्थे।"

पर इससे मूलकर्ता, टीकाकार आदिके विषयमें कुछ प्रतीत नहीं होता है। हाँ, एक बात अवश्य

नवीन ज्ञात होती है कि नन्दीसूत्रके सिवाय अन्य किसी ग्रन्थमें इसका कोई उल्लेख उपलब्ध श्वे० आगम-साहित्यमें नहीं है। क्योंकि कोषक्रमके अनुसार उक्त व्याख्याके अन्तमें केवल 'नं०' लिखा हुआ है, जोकि केवल 'नन्दीसूत्र' का ही बोधक है।

आशा है इस विषय पर हमारे समर्थ अधिकारी ऐतिहासिक विद्वान् विशेष प्रकाश डालेंगे और शास्त्रभंडारोंके मालिक अपने अपने भंडारोंमें छान-बीन करनेकी कोशिश करेंगे, जिससे यह ग्रन्थ-रत्न प्रकाशमें आसके।

सम्पादकीय नोट—

नन्दिसूत्रकी उक्त टीकामें जिस 'सिद्धप्राभृत' का उल्लेख है वह चिरन्तनाचार्य-विरचित-टीकासे भिन्न उस दूसरी टीकाके साथ भावनगरकी आत्मानन्द-ग्रन्थमालामें (सन् १९२१में) मुद्रित होचुका है जिसका हवाला मलयगिरिसूरि अपनी टीकामें देरहे हैं। मुद्रित प्रतिपरसे मूलग्रन्थकार तथा टीकाकारका कोई नाम उपलब्ध नहीं होता। ग्रन्थ-सम्पादक मुनि-श्रीचतुरविजयजीने अपनी प्रस्तावनामें यहाँतक सूचित किया है कि मूलग्रन्थकार तथा इस उपलब्ध टीकाके कर्ताका नाम कहींसे भी उपलब्ध नहीं होता है। साथ ही, यह भी सूचित किया है कि इस टीकाकी एक प्रति संवत् ११३८ वैशाखशुदि१४ गुरुवारकी ताडपत्र पर लिखी हुई पालीतानाके सेठ आनन्दजी कल्याणजीके ज्ञान-भंडारमें मौजूद है, इससे यह टीका अर्वाचीन नहीं है। मूलग्रन्थकी गाथा संख्या १२० है; जैसाकि अन्तिमगाथा और निम्न वाक्यसे प्रकट है—

"वीसुत्तरसयमेगं गाथाबंधेण पुव्वणिस्संदं ।
वित्थारेण महत्थं सुयाणुसारेण णेयव्वं ॥"

"वीसुत्तरसयगणगाथामसिद्धपाहुडं सम्मत्तं अग्गेणियपुव्वणिस्सदं।"

इस टीकाका मूल परिमाण ८१५ श्लोक-जितना और सूत्रसहित कुल परिणाम ९५० श्लोक-जितना दिया है। टीकाकारने, टीकाके निम्न अन्तिम वाक्यमें, अपना कोई नाम न देते हुए इतना ही सूचित किया है कि 'मेरा यह प्रयास केवल मूल-गाथाओंके संयोजनार्थ है, स्पष्ट अर्थ तो चिरन्तन टीकाकारोंके द्वारा कहा गया है'—

"गाथासंयोजनार्थोऽयं प्रयासः केवलोमम ।
अर्थस्तूक्तः स्फुटो ह्येष टीकाकृद्भिश्चिरन्तनैः ॥"

इस सिद्धप्राभृतका प्रारम्भ निम्न गाथाओंसे होता है—

तिहुयणपणए तिहुयणगुणाहिए तिहुयणाइसयणाणे ।
उसभादिवीरचरिमे तमरयरहिए पणमिऊणं ॥ १ ॥
सुणिउणआगमणिहसे सुणिउणपरमत्थसुत्तगंथधरे ।
चोद्दसपुव्विगमाई कमेण सव्वे पणविऊणं ॥ २ ॥
णिक्खेवणिरुत्तीहि य छहिं अट्ठहिं चाणुओगदारेंहिं ।
खेत्ताइमग्गणासु य सिद्धाणं वण्णिया भेया ॥ ३ ॥

जहाँ तक मैंने इस ग्रन्थपर सरसरी नज़र डाली है, मुझे यह ग्रंथ अपने वर्तमान रूपमें कुन्दकुन्दचार्य कृत मालूम नहीं होता। अपराजित सूरिने जिस 'सिद्धप्राभृत' का उल्लेख किया है वह इसी सिद्धप्राभृतका उल्लेख है ऐसा उनके उल्लेखपर से स्पष्ट बोध नहीं होता। हो सकता है कि वह कुन्दकुन्दके किसी जुदे सिद्धप्राभृतसे ही सम्बन्ध रखता हो अथवा यह वर्तमान सिद्धप्राभृत कुंद-कुन्दकुन्दके सिद्धप्राभृतका ही कुछ घटा-बढ़ाकर किया गया विकृत रूप हो। कुछ भी हो इस विषयकी विशेष खोज होनी चाहिये।